श्री शङ्करो विजयतेतराम्

जगद्गुरु श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य विरचित

# "अनात्मश्रीविगर्हणम्"

## आत्मषट्कस्तोत्रञ्च

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी महाराज

कृत हिन्दी भाषानुवाद सहित

द्वितीयावृत्तिः १०००

प्रकाशक—

श्री लाला त्रिलोकनाथ

कनक मण्डी जम्मू तवी (जम्मू-काश्मीर)

विजया दशमी

वि० सं० २०२२

मूल्य—सदुपयोग

"जगद्गुरु श्री आद्य शङ्कराचार्य विरचित"

# अनात्मश्रीविगर्हणम्

लब्धा विद्या राजमान्या ततः किम्, प्राप्तासंपत्प्राभवाढ्या ततः किम् ।
भुक्ता नारी सुन्दराङ्गी ततः किम्, येन स्वात्मा नैवसाक्षात्कृतोऽभूत् ॥ १ ॥

जिसने स्वरूपभूत आत्माका साक्षात्कार नहीं किया है किन्तु राजाओंद्वारा सम्मानित विद्या प्राप्त कर ली है, तो इससे क्या ? यदि दूसरोंपर प्रभाव डालने वाली धन आदि सम्पत्ति प्राप्तकर ली तो इससे क्या ? लावण्यसम्पन्न अंगोंयुक्त नारीसे रमण भी किया तो इससे क्या ? अर्थात् आत्मसाक्षात्कारके विना यह सब प्राप्त होनेपर भी निष्फल समझने चाहिएँ अथवा केवल बन्धनके ही हेतु हैं।

तात्पर्य—राजा आदि द्वारा सम्मानित लौकिक विद्या आदिकी जो उपेक्षा की गई है, उसका कारण क्या है ? ऐसा विचार मस्तिष्कमें एक बार अवश्य उत्पन्न होकर चक्र काटने लगता है और प्रायः संसारमें ऐसा ही दृष्टिगोचर होता है कि लोग राजा आदिसे सम्मानित विद्या आदिकी प्राप्तिमें प्रयत्नशील हैं। यह ठीक है, परन्तु वास्तवमें प्राणी कुछ और चाहता हुआ भी और ही किसीमें प्रवृत्त हो जाता है। अब प्रश्न उठता है कि वह चाहता क्या है ?

परम आनन्दकी प्राप्ति और अनर्थमय दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति यही संसारमें प्रत्येक प्राणी चाहता है। चाहे वह किसी देश, किसी काल व किसी परिस्थितिमें भी क्यों न हो, ब्रह्मासे लेकर कीट-पतंग पर्यन्त जितनी भी उत्तम, मध्यम और कनिष्ट योनियां हैं, सभी की आन्तरिक अभिलाषा यही रहती है कि मैं नित्य सुखी रहूं और दुःखी कभी न होऊँ। यह ठीक है कि प्राणी मात्र यही चाहता है; जो आपने प्रतिपादन किया। परन्तु इसके लिये आत्मसाक्षात्कारकी क

आवश्यकता है। यूँ तो राजसम्मानित विद्या आदि द्वारा सब सुखकी सामग्री उपलब्ध हो जाती है, जिसके द्वारा वह व्यक्ति सुखी रहता है और दुःख कभी उसे छू भी नहीं सकता। यह ठीक है, किन्तु यह सब बिना विचारके कहा गया है। कारण कि इससे दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती। इसपर छान्दोग्य-उपनिषद्का एक प्रसिद्ध उदाहरण है —

अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारँ नारदस्तँ होवाच।
यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति सहोवाच ॥ (छा०७।१।१)

'एक समय ब्रह्माके मानस पुत्र योगीश्वर ब्रह्मनिष्ठ सनत्कुमारके पास विधिवत् जाकर नारदने प्रार्थना की—हे भगवन्! मुझे उपदेश दीजिये। सनत्कुमार बोले—हे नारद! आत्माके विषयमें आप जो कुछ जानते हैं, कह सुनाइये। फिर यदि आवश्यकता पड़ी तो मैं उससे अधिक तुम्हें उपदेश करूँगा। इसपर नारद बोले—हे भगवन्! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, व्याकरण, पितृविद्या, गणितविद्या, उत्पात आदि ज्ञान, महाकाल आदि निधि शास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, ब्रह्मविद्या-ऋग्वेद आदि वेदोंके अङ्गभूत-शिक्षा, कल्प, छन्दादि शास्त्र, भूत-तन्त्र, क्षत्रिय विद्या-धनुर्वेद, ज्योतिषशास्त्र, सर्पविद्या, नृत्य, गीत, संगीत, शिल्प आदि शास्त्रोंको मैं भली भान्ति जानता हूँ। इतना कुछ जानकर भी मैं अपनेको शोकयुक्त पाता हूँ। हे भगवन्! मैं केवल मन्त्रवित् हूँ आत्मवित् नहीं, क्योंकि मैंने आप जैसे ब्रह्मवेत्ताओंसे सुना है कि 'तरति शोकमात्मवित्' (आत्मवित् शोकमय संसारसे तर जाता है) 'आचार्यवान् पुरुषो वेद' (आचार्यवान् पुरुष ही उस आत्मतत्त्वको जानता है) इसलिये हे भगवन्! मैं आपकी शरण हूँ, आप मुझे इस शोक सागरसे पार कीजिये। तब ब्रह्मनिष्ठ सनत्कुमार बोले—हे नारद! आपने जो कुछ श्रवण व अध्ययन किया है वह केवल नाम मात्र है अर्थात् वाणी मात्र है। जिससे केवल नाम, रूप संसारका ज्ञान होता है, उस स्व स्वरूप भूत आत्माको अभी तक तुमने नहीं जाना, जिसके जाननेसे ही शोक आदिसे मुक्त हो सकते हो।

इसीप्रकार सांसारिक व्यक्तियोंपर प्रभाव डालनेवाली बाह्य धन आदि संपत्ति भी दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिका उपयुक्त साधन नहीं हैं। 'जैसे शत्रुओंसे रहित



भूमिका समस्त राज्य और देवताओंका आधिपत्य इन्द्रपद प्राप्तकर भी इन्द्रियोंको संतप्त करनेवाले शोककी अत्यन्त निवृत्तिका साधन मुझे अनुभव में नहीं आता. ऐसी अर्जुनने भगवान् कृष्णसे प्रार्थना की। (गीता० २।८)

एवं पूर्ण वैभव युक्त महाराज ययाति अनेक रमणियों के साथ भोग विलास के लिये अपने पुत्र पुरु की सहस्र वर्ष आयु लेकर भी तृप्त न हुए

न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

(भोगों द्वारा कदापि कामनाएँ शांत नहीं होतीं, अपितु आहुति से जैसे अग्नि प्रज्वलित होती है, वैसे भोगोंसे कामनाएँ प्रतिदिन बढ़ती हैं।) इत्यादि अनेक उदाहरणोंसे यह सिद्ध होता है कि लौकिक विद्या अथवा बाह्य सम्पत्ति आदि दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्तिके साधन नहीं हैं, वे किसी न किसी प्रकार अन्तमें दुःखके ही साधन सिद्ध होते हैं।

सारांश यह है कि लौकिक व पारलौकिक विद्या आदि परमानन्दकी प्राप्ति और दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिके साधन नहीं हैं, अतः आत्मसाक्षात्कार ही आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन सभी दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्तिका एकमात्र साधन है। अच्छा, यह मान लिया कि आत्मसाक्षात्कार ही करना चाहिए। परन्तु वह आत्मसाक्षात्कार तो प्रायः सभीको है ही। प्रत्येक अपनेको जानता है कि मैं हूँ, अपनेमें किसीको भी सन्देह (मैं हूं कि नहीं) नहीं है, और 'मैं नहीं हूं' ऐसा भ्रम भी किसीको नहीं है। फिर भी जिन दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्तिको प्राणी निरन्तर चाहता है और जिसके प्राप्तिके लिये उचित व अनुचितरूपसे सतत प्रयत्नशील है, वह तो होती नहीं।

यदि आप अपनेको जानते हैं तो बताइये कि आप कौन हैं? 'मैं गोविन्द हूँ' क्योंकि मुझे सभी ऐसा कहते हैं। परन्तु गोविन्द तो नाम है जो वाणी द्वारा प्रयोग किया जाता है और यह जन्म लेने पर व्यवहार चलाने के लिये रखा गया है, आगे पीछे तो था नहीं और बदला भी जा सकता है, कोई आपको कृष्ण भी कह सकता है, तो फिर सोचिये—क्या आप गोविन्द हैं अथवा और कुछ? जी हां! यह ठीक है कि गोविन्द नाम है, यह मैं नहीं। किन्तु जिसपर यह नाम

कल्पित किया गया है वह यह शरीर मैं हूं, क्योंकि 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम्' कठ०) 'शरीर आत्मा है' ऐसा शास्त्रोंसे ज्ञात होता है।

क्या आप यह देह हो हैं? जिसकी सत्ता पहले भी नहीं थी और अन्तमें भी नहीं रहेगी। जो केवल मातृगर्भमें वृद्धिको पाकर बाहर विशेष अन्न, जल आदि द्वारा विकसित हुआ है। इसपर गम्भीरतासे थोड़ा-सा विचार कीजिये कि यह देह किन किन वस्तुओंका समूह है? हम लोग जो खाते पीते हैं उससे रस, रक्त, मांस, हड्डी मज्जा आदि धातुओंकी उत्पत्ति होती है। इनके विकास से इसका विकास और ह्राससे ह्रास देखने में आता है। इससे सिद्ध होता हैकि यह जड़ समुदाय ही शरीर है और इसका बाल, युवा, वृद्ध आदि अनेक अवस्थाओं द्वारा परिवर्तन भी स्पष्ट प्रतीत होता है। इस प्रकार उत्पत्ति और विनाश युक्त यह शरीर ही क्या आप हैं! और यदि इस पाञ्च-भौतिक देहको आत्मा कहें तो 'कृतहान अकृताभ्यागम' दोष भी प्राप्त होगा अर्थात् जो इस देहसे शुभाशुभ कर्म किये गये हैं वे बिना भोगे नष्ट हो जायेंगे, यह कृत कर्मका बिना भोगे नाश है, जब कि शास्त्रोंमें कहा गया है 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम।' (सैकड़ों कल्प बीतनेपर भी किया गया शुभाशुभ कर्म क्षय नहीं होता किन्तु अवश्य भोगना पड़ता है) इत्यादि शास्त्रसे विरोध होता है. और इस शरीरका जन्म अभी हुआ, पहले था नहीं, जबकि संसारमें विषमताका प्रत्यक्ष अनुभव होता है, कोई राजगृहमें सुखी है कोई रङ्कके गृहमें दुःखी है. कोई पक्षी है, कोई पशु, इत्यादि यह विषमता स्पष्ट प्रतीत होती है। पूर्वमें तो यह देह था नहीं और कर्म भी नहीं थे, तो किन कर्मोंका फल प्राप्त हुआ? इस प्रकार व्यावहारिक विषमतासे विरोध होता है। इसलिये यह शरीर तो आत्मा हो नहीं सकता, एवं इन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि भी जड़ होने से आत्मा नहीं हो सकते, किन्तु शरीर, इन्द्रिय, और मन आदिकी प्रत्येक अवस्थाका जो साक्षी-चेतन है वह इस जड़ समुदायसे पृथक् है, ऐसा अनुभव व शास्त्र सिद्ध है।

अच्छा! विकार पूर्ण यह देह आदि मैं नहीं हूँ, किन्तु इसमें स्थित और इससे पृथक् कर्ता, भोक्ता जीवात्मा मैं हूँ। ऐसा माननेसे पूर्वोक्त दोषोंकी प्रसक्ति-प्राप्ति भी नहीं होगी और अनुभव भी होता है कि मैं कर्ता भोक्ता और सुखी-दुःखी हूं,



अतः सुख दुःख आदि गुणोंवाला कर्ता, भोक्ता ईश्वरका अंश जीव मैं हूँ। परन्तु यह कर्ता भोक्ता आदि जीव भी आप नहीं हैं, क्योंकि कर्ता, भोक्तापन तो विकार है, जबकि 'विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्' (गीता० १३।१९) (हे अर्जुन! समस्त विकार और गुण प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुए हैं, तू ऐसा जान) "केवलो निर्गुणश्च" (श्वेता ६।१।१) (वह आत्मा केवल है अर्थात् समस्त सङ्ग रहित है और निर्गुण है) असङ्गो ह्ययंपुरुषः' 'असङ्गो न हि सज्जते' (आत्मा असङ्ग है, किसीसे किसी प्रकार भी लिप्त नहीं होता) इस प्रकार श्रुति और स्मृति आत्मा को असङ्ग, निर्गुण, निर्विकार वर्णन करती हैं। तब आत्माको कर्ता, भोक्ता आदि कैसे माना जा सकता है? कर्ता, भोक्ता आदिकी जो प्रतीति होती है, वह अनादि अविद्या द्वारा होती है। जैसे स्फटिकमें उपाधि रूप रक्त पुष्पकी समीपतासे लालिमाकी प्रतीति सर्वानुभव सिद्ध होनेपर भी मिथ्या है, वैसे असङ्ग आत्मामें अविद्या-अन्तःकरण रूप उपाधिसे कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि मिथ्या प्रतीत होता है, वास्तविक नहीं। इसलिये कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि औपाधिक होनेसे मिथ्या हैं। मिथ्या वस्तुका सम्बन्ध कल्पित होता है, इससे मिथ्या प्रतीति द्वारा सत्य वस्तुका न कुछ बनता है और न कुछ बिगड़ता ही है। जैसे मिथ्या जलकी प्रतीतिसे मरुस्थलकी रेत गीली नहीं होती और मिथ्या सर्पकी प्रतीतिसे रस्सी कभी विषयुक्त नहीं हो जाती, वैसे आत्माके विषयमें भी समझना चाहिए। यदि आत्माको भी वास्तविक कर्ता, भोक्ता आदि मानें तो उक्तश्रुति-स्मृति और अनुभवसे विरोध प्राप्त होगा, जो किसीको भी अभीष्ट नहीं है।

जीवको जो ईश्वरका अंश कहा गया है, अब उस पर विचार किया जाता है—जैसे 'प्रज्वलित अग्निसे अनन्त चिनगारियां समानरूपसे उत्पन्न होती हैं, वैसे ही अक्षर ब्रह्मसे अनेक प्रकारके भाव पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उसमें लय होते हैं" (मुण्डकोपनिषद्)

"हे अर्जुन! जीवलोकमें जीव रूप मेरा ही सनातन अंश है" (गीता० १५।७) इत्यादि प्रमाणोंके आधार पर यह उक्त प्रश्न उत्पन्न होता है, परन्तु गम्भीरता व उदारता के साथ विचार करने पर इसका सहसा समाधान भी हो जाता है। अंश और अंशी भाव तो सावयव और परिच्छिन्न पदार्थोंमें होता है। सावयव

और परिच्छिन्न पदार्थ तो निश्चित उत्पत्ति और विनाशयुक्त होते हैं, यह नियम है, इस नियमानुसार तो ईश्वर और जीवके भी उत्पत्ति और विनाश होंगे। तब तो मोक्ष आदि प्रतिपादक शास्त्र निरर्थक सिद्ध होंगे। जब ऐसा है तब अंश-अंशी भाव बोधक श्रुतियोंका क्या अर्थ होगा ? सुनिये ! माया ईश्वरकी उपाधि है और अविद्या अथवा अन्तःकरण जीवकी, माया कारण है और अविद्या कार्य, कार्य कारणमें अंश अंशीभाव होता ही है, जैसे मिट्टी और घटमें, इसप्रकार माया और अविद्या रूप उपाधियोंको लेकर उपाधेयों ( जीव और ईश्वर ) में अंश अंशीभावकी मिथ्या कल्पनाकी गई है। इसलिये जीवमें कर्तृत्व आदिके समान अंशभाव भी औपाधिक होनेसे कल्पित ही है अब आत्माको अणुपरिमाण वा मध्यम परिमाण मानने वालोंके प्रति कहा जाता है—'नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययम्'० ( नित्य व्यापक, समस्त विश्वमें ओत-प्रोत व्याप्त, अति सूक्ष्म और अविनाशी है ) यह श्रुति आत्माको उत्पत्ति आदि विकारोंसे शून्य, अणु और मध्यम परिमाण रहित सूक्ष्म और अविनाशी बोध कराती है। 'आत्मैवेदमग्र आसीत्' 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' ( यह दृश्यमान जगत् स्वोत्पत्तिसे प्रथम एक आत्मा ही था ब्रह्म स्वरूप ही था ) परन्तु इन श्रुतियोंने तो ब्रह्म और आत्मा का भिन्न-भिन्न रूपसे प्रतिपादन किया है, अतः आत्मा ब्रह्मसे भिन्न है अभिन्न नहीं। ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये; क्योंकि 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' एक ही अद्वितीय—द्वैतरहित ब्रह्म है ) 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ( यह समस्त जगत् ब्रह्मरूप ही है ) 'अयमात्मा ब्रह्म' ( यह अन्तरात्मा ही ब्रह्म है ) महर्षि उद्दालकने श्वेत-केतुको आत्मोपदेश करते हुए कहा—'एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो' ( यह समस्त दृश्यमान जगत् आत्मा ही है वह सत्य है, वह आत्मा है, हे श्वेतकेतु ! वह तू है। ) 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ( ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त स्वरूप है )

इस प्रकार श्रुतियोंने अन्तरात्माको द्वैत रहित ब्रह्मस्वरूप कहा है, अतः आत्मा ब्रह्म ही है ऐसा सिद्ध होता है। श्रुतियोंने ब्रह्म और अन्तरात्माका केवल अभेद ही वर्णन नहीं किया है अपितु ब्रह्ममें तद्भिन्न द्वैतका निषेध भी किया है, यथा—'नेह नानाऽस्तिकिंचन' ( उस अद्वितीय ब्रह्ममें वस्तुतः नाना-द्वैत प्रपञ्च



नहीं है ) 'मायामात्रमिदं राजन् ! नानात्वं प्रत्यगात्मनि' ( भागवत् १२।४।२५ ) राजन् ! प्रत्यगात्मामें जो नानात्व प्रतीयमान है वह मायामात्र है ) अद्वैतस्वरूप आत्मामें जो नानात्व देखता है, उसके लिए श्रुतिने भयका वर्णन किया है—'मृत्यो स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' ( जो अद्वैतस्वरूप आत्मामें भेद-सा देखता है वह मृत्युसे मृत्यु-जन्म मरण परम्परा रूप संसारको प्राप्त होता है ) 'द्वितीया द्वैभयं भवति' ( द्वैतसे ही भय प्राप्त होता है ) भय ही दुःखका कारण है और भय द्वैतसे होता है. द्वैत अज्ञान मूलक है, वह अज्ञान आत्म-ज्ञानसे ही निवृत्त होता है, अन्यथा नहीं। 'ज्ञानमज्ञाननिवर्तकम्' ( ज्ञान ही अज्ञानका निवर्तक है ) इसलिए 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' ( ज्ञानसे ही कैवल्य-मोक्ष प्राप्त होता है ) 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' ( प्रत्यगभिन्न ब्रह्मको [ मैं ब्रह्म हूँ, कर्ता, भोक्ता आदि संसारी मैं नहीं हूँ ] ऐसा जानकर ही मृत्यु-जन्म मरणको अतिक्रमण कर जाता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है, क्योंकि मोक्ष प्राप्तिके लिए अद्वैत आत्मज्ञानके बिना और दूसरा कोई साधन नहीं है ) इसीलिए गुरु द्वारा "तत्त्वमसि" आदि महावाक्योंके श्रवण आदिसे जब आत्मज्ञान हो जाता है तब अज्ञान और अज्ञान मूलक द्वैत प्रपञ्च से जो अनेक अनर्थोंका मूल है, मुक्त हो जाता है। इन श्रुति आदि प्रमाणोंसे यह जान लिया कि आत्मा ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही आत्मा है. दोनों एक ही हैं और आत्मज्ञानसे ही मोक्ष होता है अन्यथा नहीं। परन्तु आत्मा आनन्द-स्वरूप है, ऐसा वर्णन नहीं किया, जो प्राणी मात्रका लक्ष्य है ? 'आनन्दो ब्रह्म व्यजानात्' ( ब्रह्म आनन्द स्वरूप है ऐसा जानो ) 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' ( ब्रह्म चैतन्य और आनन्दस्वरूप है )।

इस प्रकार ब्रह्म निरतिशय आनन्दस्वरूप श्रुतियोंमें कहा गया है। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' ( ब्रह्मको जानने वाला ब्रह्मस्वरूप ही होता है ) ( उसीको जानकर आनन्दस्वरूप होता है ) 'तरति शोकमात्मवित्' ( आत्मवित् शोकसे तर जाता है अर्थात् संसारसे मुक्त हो जाता है। आनन्दस्वरूप ब्रह्मको जानकर ब्रह्मवेत्ता किसीसे भी भयभीत नहीं होता ) 'अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि' (याज्ञवल्क्य—हे जनक ! तू अब निश्चय ही अभय पदको प्राप्त हुआ है) इसप्रकार

श्रुतियां आत्मज्ञानसे परमानन्दकी प्राप्ति और दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिका प्रतिपादन करती हैं, जो प्राणी मात्रका चरम लक्ष्य है। वास्तवमें बात यह है कि जैसे रस्सीमें भ्रमसे सर्पकी प्रतीति होनेपर भय आदि उत्पन्न होते हैं, जब यह ज्ञान हुआ कि यह रस्सी है सर्प नहीं, तब सर्पके मिथ्या ज्ञानकी निवृत्तिके साथ ही साथ भय आदि भी निवृत्त हो जाते हैं, उनकी निवृत्तिके लिए पृथक् प्रयत्न नहीं किया जाता, इसी प्रकार अद्वैत ब्रह्ममें भी मिथ्याज्ञान द्वारा अनर्थमय द्वैत प्रपञ्च प्रतीत होता है। जब अधिष्ठान ब्रह्मका ज्ञान होता है, तब मिथ्याज्ञानकी निवृत्तिके साथ साथ द्वैत प्रपञ्चकी भी निवृत्ति हो जाती है, जो भयका हेतु है। परन्तु रस्सीके ज्ञानसे जैसे सर्पकी अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है वैसे ब्रह्मज्ञानसे मिथ्या द्वैत प्रपञ्चकी अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती, क्योंकि जहां अधिष्ठानके ज्ञानसे कल्पित वस्तुकी स्वरूपसे ही निवृत्ति हो, उसे अत्यन्त निवृत्ति कहा जाता है, जैसे रस्सीमें सर्पकी। दूसरी बाधरूप निवृत्ति जो द्वैतप्रपञ्चमें घटती है। जैसे स्फटिकमें उपाधि रूप रक्त पुष्पकी समीपतासे लालिमाकी प्रतीतिका प्रत्यक्षसे बाध होनेपर भी मिथ्या प्रतीति होती रहती है, वैसे ब्रह्मज्ञान होनेपर अन्तःकरणरूप उपाधिके होनेसे द्वैत प्रपञ्चकी प्रतीतिके रहते भी उसमें मिथ्या बुद्धि हो जाती है अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे पहले अज्ञान अवस्थामें जो जगत्में सत्यत्व बुद्धि थी उसका अद्वैत आत्मज्ञान होनेपर निश्चित बाध हो जाता है, इससे ज्ञानावस्थामें भी जगत्की मिथ्या प्रतीति होती रहती है। जैसे आकाशकी नीलिमाका बाध होनेपर भी "आकाश नीला है" ऐसी मिथ्या प्रतीति होती रहती है। दूसरा उदाहरण—स्वप्न पदार्थोंकी सत्यता तब तक प्रतीत होती है जब तक स्वप्नावस्था है, जाग्रतावस्थाके आनेपर उन्हींका स्वतःबाध होकर उनमें मिथ्यात्व निश्चय होता है, एवं द्वैत प्रपञ्चकी सत्यता भी तब तक भासती है जब तक अज्ञानावस्था है, परन्तु जाग्रत् अवस्थारूप प्रत्यगभिन्न ब्रह्मज्ञान होनेपर उसका बाध होनेसे मिथ्यात्व निश्चय होता है। इस प्रकार आत्मसाक्षात्कार किये विना उक्त लौकिक विद्या आदि केवल अज्ञान और उसके कार्य अनात्माभिमान आदि को अधिक दृढ़कर बन्धनके ही हेतु सिद्ध होते हैं। अतः आत्मसाक्षात्कार अत्यावश्यक है। विस्तार भयसे संक्षेप किया गया है ॥१॥



केयूराद्यैर्भूषितो वा ततः किम्, कौशेयाद्यैरावृतो वा ततः किम्।
तृप्तोमृष्टान्नादिना वा ततः किम्, येन ... ... ... ॥२॥

केयूर—बाजुबन्द। भुजाका एक विशेष भूषण) आदि विविध सुवर्णमय भूषणोंसे अलंकृत हुआ तो इससे क्या? सुन्दर व कोमल-कोमल रेशमी आदि वस्त्रोंसे देहको सजाया तो इससे क्या? शुद्ध घृत आदिसे पकाये गये विविध भोजनों द्वारा तृप्त भी हुआ तो इससे क्या? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ॥ २ ॥

भा०—जब यह व्यक्ति अच्छे-अच्छे आभूषण वस्त्र आदि धारण करता है, तब अपने सजीकृत शरीरको देखकर मनमें फूला नहीं समाता और अपनेसे साधारण अवस्था युक्त दीन व्यक्तियोंको देखकर उसके मनमें अभिमान हो आता है कि मैं सुन्दर भूषण और वस्त्रों वाला हूं और विविध स्वादिष्ट पवित्र भोजन करने वाला हूँ। इस प्रकार उसके अन्त करणमें अनात्माभिमान और भी दृढ़ हो जाता है, जो संसारका कारण है। वह अज्ञान मूलक अभिमान आत्मसाक्षात्कार के विना निवृत्त नहीं हो सकता, इसलिए आत्मसाक्षात्कार आवश्यक है ॥ २ ॥

दृष्टा नाना चारु देशाः ततः किम्, पुष्टा चेष्टा बन्धुवर्गास्ततः किम्।
नष्टं दारिद्र्यादिदुखं ततः किम्, येन ... ... ... ॥३॥

अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न व सुन्दर देशोंका पर्यटन किया तो इससे क्या? इष्टमित्र बन्धुवर्ग आदिका धन भोजन आदिसे यदि पालन-पोषण भी किया तो इससे क्या? अपनी अथवा अन्यकी दरिद्रता आदि दुःख यदि दूर कर दिया तो इससे क्या? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो .. ..... ३॥

स्वदेशस्थित अच्छे रमणीय नगर, बड़े बड़े नद और नदियाँ, झीलें, सुन्दर-सुन्दर पक्षियों और कमलोंसे युक्त सुन्दर सरोवर, हिमाच्छादित पर्वत, पवित्र जलको लेकर बहने वाले कलकल शब्द युक्त सुन्दर झरने रमणीय वन, उपवन, वाटिकाएँ आदि देखे, विदेशमें जाकर भी विविध रमणीय स्थान देखे और इष्ट, मित्र आदिका धन-धान्य आदिसे पालन-पोषण भी किया, धन आदि सम्पत्तिसे बाह्य दरिद्रता भी नष्ट कर दी, यदि इन सबके होते हुए भी आन्तरिक दरिद्रता दूर नहीं हुई तो क्या लाभ? अतः आन्तरिक दरिद्रताको दूर करनेके लिये अखण्ड आत्मधनको प्राप्त करना आवश्यक है ॥ ३ ॥

स्नातं तीर्थे जह्नुजादौ ततः किम्, दानं दत्तं द्व्यष्टसंख्यं ततः किम् ।
जप्ता मन्त्राः कोटिशो वा ततः किम्, येन ··· ··· ॥४॥

जह्नु ऋषि द्वारा प्रकटकी गई और महाराज भगीरथ द्वारा लाई गई श्री भागीरथी गंगा आदि अठसठ तीर्थोंमें स्नान भी किया तो इससे क्या ? करोड़ों मन्त्रोंका करोड़ों बार जप भी कर लिया तो इससे क्या ? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥ ४ ॥

कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् ।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन मुक्तिं न भजति जन्मशतेन ॥

चाहे गंगा-सागरको जाये, चाहे नाना व्रतोंका परिपालन अथवा दान करे तो भी सब शास्त्रोंका यही सिद्धान्त है कि बिना आत्मज्ञानके इन सबसे सौ जन्ममें भी मुक्ति नहीं हो सकती ॥ ४ ॥

गोत्रं सम्यग्भूषितं वा ततः किम्, गात्रं भस्माच्छादितं वा ततः किम् ।
रुद्राक्षादिः सुष्ठतो वा ततः किम्, येन ··· ··· ॥५॥

अच्छे सुन्दर गोत्र द्वारा भूषित रहे. अर्थात् अच्छे महान् गोत्रमें उत्पन्न हुए तो इससे क्या ? भस्म, चन्दन शरीरको लगा दिया तो इससे क्या ? सुन्दर और मनोहर रुद्राक्ष आदिको धारण भी किया तो इससे क्या ? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥ ५ ॥

अन्नैर्विप्रास्तर्पिता वा ततः किम्, यज्ञैर्देवास्तोषिता वा ततः किम् ।
कीर्त्याव्याप्ताः सर्वलोकास्ततः किम्, येन ··· ··· ॥६॥

षड्रस युक्त अनेक प्रकारके भोजनों द्वारा ब्राह्मणोंको तृप्त किया तो इससे क्या ? और अनेक प्रकारके दर्श पूर्णमास आदि यागों द्वारा इन्द्र आदि देवोंको भी सन्तुष्ट किया, तो इससे क्या ? और कीर्ति द्वारा समस्त लोक व्याप्त हुए अर्थात् ऊर्ध्व, अधः आदि सभी लोकोंमें आपकी कीर्ति व्याप्त हुई, सभी लोकोंमें आपका यश गाया जाने लगा तो इससे भी क्या ? यदि आत्म-साक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥ ६ ॥

कायक्लिष्टश्चोपवासैस्ततः किम्, लब्धाः पुत्राः स्वीयपत्न्यास्ततः किम् ।
प्राणायामः साधितो वा ततः किम्, येन··· ··· ··· ··· ··· ··· ॥७॥



कायाको क्लेश—देहको सुखा देने वाले उपवास भी किये तो इससे क्या ? प्राणायाम ( पूरक, कुम्भक, रेचक ) आदि अनेक प्रकार की हठयोग क्रियाओं द्वारा प्राणको रोक कर अपने अधीन भी कर लिया तो इससे क्या ? यदि आत्म-साक्षात्कार नहीं किया तो ॥ ७ ॥

युद्धे शत्रुर्निर्जितो वा ततः किम्, भूयो मित्रः पूरितो वा ततः किम् ।
योगैः प्राप्ता सिद्धयो वा ततः किम्, येन ·· ·····॥८॥

युद्ध-भूमिमें शत्रुको जीत लिया तो इससे क्या ? बहुत मित्रोंको धन आदि से पूर्ण किया तो इससे क्या ? योग द्वारा यदि सिद्धियाँ भी प्राप्त करलीं तो इससे क्या ? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥ ८ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच भूत हैं। इनकी सूक्ष्म, स्थूल और कारण भेदसे अनेक अवस्थाएँ हैं। जब इनकी समस्त अवस्थाओं पर संयम द्वारा योगी अधिकार कर लेता है तब योगी को अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वे इस प्रकार हैं—

( १ ) अणिमा उक्त पाँच भूतोंके कारणरूप तन्मात्राओंमें संयम करनेसे यह सिद्धि प्राप्त होती है। इससे अणुके समान सूक्ष्म रूप धारण कर लेता है, जिससे पत्थरमें भी प्रवेश कर सकता है। जैसे हनुमानने सुरसाके मुखमें एवं लंकामें प्रवेश करते समय किया था।

( २ ) लघिमा—पृथ्वी आदि भूतोंके परमाणुओंमें संयम करनेसे यह सिद्धि प्राप्त होती है। इससे योगी शरीरको हलका कर लेता है, जिससे जल आदिके ऊपर भी चलता है और आकाश गमन आदि भी कर सकता है।

( ३ ) महिमा—महत्वमें संयम करनेसे यह सिद्धि प्राप्त होती है। इससे योगी शरीरको जितना चाहे बड़ा कर लेता है। जैसे हनुमानने सुरसा आदिके आगे किया था।

( ४ ) गरिमा—शरीरको जितना चाहे भारी कर लेना, जैसे हनुमानने भीमसेनके मार्गमें रुकावट डालते हुए किया था। ( महाभारत वन पर्व अ० १४६, १४७ ) यह गुरुत्वमें संयम करनेसे होती है। ये शारीरिक सिद्धियाँ है।

( ५ ) प्राप्ति—जिस किसी इच्छित भौतिक पदार्थको संकल्पसे प्राप्त कर

लेना। जैसे बैठे-बैठे अंगुलीसे चन्द्रमाको स्पर्श कर लेना। यह अहंकारमें संयम करनेसे प्राप्त होती है।

( ६ ) प्राकाम्य—यह सूत्रात्मा ( हिरण्यगर्भ ) में संयम करनेसे प्राप्त होती है। इससे इच्छानुसार सभी भोग अनायास प्राप्त हो जाते हैं।

( ७ ) वशित्व—ईश्वरमें संयम करनेसे उस योगीमें ईश्वरके कुछ गुणोंका प्रादुर्भाव हो जाता है, जिससे पांच भूत और उनका कार्य उसके वशमें हो जाता है।

( ८ ) ईशित्व—जो मायाके स्वामी ईश्वरमें विश्वरूपसे धारणा करता है उसे यह सिद्धि प्राप्त होती है, जिससे वह शरीरों और जीवोंको अपनी इच्छानुसार प्रेरित करनेमें समर्थ होता है।

इसी पकार दश सिद्धियाँ और भी हैं जो योगीको प्राप्त होती है। परकाय प्रवेश आदि। ये सिद्धियां कैसे होती हैं ?

'जन्मोषधिमन्त्रतपसमाधिजाः सिद्धयः' ( यो० सू० ४।१ ( जन्मसे, औषधि सेवनसे, मन्त्रानुष्ठानसे, तपसे और समाधिसे सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं ) शरीर, इन्द्रिय और चित्तमें साधनों द्वारा परिवर्तन होकर जो अलौकिक शक्तियों का प्रादुर्भाव है, उसे सिद्धि कहते हैं। ये इस प्रकार होती हैं।

( १ ) प्राणी मर कर जब एक योनिसे दूसरी योनिमें जाता है तब उसके प्रारब्धानुसार शरीर, इन्द्रिय और चित्तका परिवर्तन होकर उनमें अपूर्व शक्तियों का प्रादुर्भाव हो जाता है। जेसे मनुष्य योनिसे देव आदि योनियोंमें जानेपर शरीर, इन्द्रिय और चित्तमें अपूर्व शक्तियोंका प्रादुर्भाव हो जाता है, जिससे वहाँ के भोगोंको भोगनेमें समर्थ होता है, अन्यथा दिव्य भोग भोगनेमें समर्थ नहीं होगा। जैसे राजा त्रिशंकुको इन्द्रने स्वर्गसे वापिस किया था। इसे जन्मजा सिद्धि कहते हैं। श्री वेदव्यास कपिल, शुकदेव आदि महर्षि जन्म सिद्ध थे।

( २ ) जब मनुष्य किसी औषधिके सेवन करनेसे अपने शरीरका कल्पकर लेता है, तब उससे भी शरीर आदिमें अपूर्व शक्तियोंका प्रादुर्भाव हो जाता है। इसे 'औषधिजा' सिद्धि कहते हैं। औषधि सेवनविधि आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें विविध प्रकारसे उपलब्ध होती है। जैसे देवोंके वैद्य अश्विनीकुमारोंने च्यवन महर्षिको औषधि द्वारा कल्प कराकर यौवनावस्था प्रदान की।



( ३ ) जब मनुष्य अपने अन्दर विलक्षण सामर्थ्य सम्पादन करनेके लिये किसी मन्त्रका विधिवत् अनुष्ठान कर लेता है, तब उससे भी उसके शरीर, इन्द्रिय और चित्तमें विलक्षण शक्तियोंका प्रादुर्भाव हो जाता है। इसे 'मन्त्रजा' सिद्धि कहते हैं। इनका वर्णन वेद, पुराण, इतिहास और तन्त्र आदि ग्रन्थोंमें विविध प्रकारसे मिलता है।

( ४ जब मनुष्य शास्त्रोक्त तपका विधिवत् अनुष्ठान करता है अथवा कर्तव्य पालनमें कष्टको सहर्ष सहन करता है, और धर्मका त्याग नहीं करता, तब उस तपसे भी उसके शरीर, इन्द्रिय और चित्तका मल जलकर भस्म हो जाता है और अपूर्व शक्तियोंका प्रादुर्भाव हो जाता है। जैसे विश्वामित्र भरद्वाज और जमदग्नि आदि महर्षियोंने तप द्वारा सिद्धियाँ प्राप्त कीं। इसे तपजा सिद्धि कहते हैं।

( ५ ) धारणा, ध्यान और समाधिके अभ्याससे शरीर, इन्द्रिय और चित्तमें जो अपूर्व शक्तियोंका प्रादुर्भाव है, वह 'समाधिजा' सिद्धि कहलाती है। इसका विशेष वर्णन योग दर्शन आदि ग्रन्थोंमें द्रष्टव्य है।

ये सिद्धियां भी बन्धनके ही कारण हैं, क्योंकि इनके होनेसे योगीको अहंकार हो जाता है कि मैं इतनी सिद्धियोंका स्वामी हूँ। उनका अज्ञान व अहंकारवश उचित व अनुचितरूपसे प्रयोग करके नये कर्मोंको जन्म देता है जो उसके पुनः जन्मके कारण बनते हैं। ये भी आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें बाधक हैं। जैसे विश्वामित्रने तप आदि द्वारा सिद्धियोंको प्राप्तकर अहंकारवश उन सिद्धियोंके बलसे ब्रह्मर्षि वसिष्ठके सौ पुत्र मरवाये। इस प्रकार ये भी आत्मज्ञानके बिना अनर्थके ही मूल हैं। अतः आत्मसाक्षात्कार करनेवालेके लिये ये सभी हेय हैं ॥ ८ ॥

अब्धिः पद्भ्यां लङ्घितो वा ततः किम्, वायुः कुम्भे स्थापितो वा ततः किम्।
मेरूः पाणावुद्धृतो वा ततः किम्, येन ... ... ... ॥ ९ ॥

रावण आदिके समान यदि किसीने पैदल चल कर समुद्रको पार किया तो इससे क्या ? प्राणायाम द्वारा यदि किसीने वायुका कुम्भक द्वारा निरोध भी कर लिया तो इससे क्या ? यदि किसीने रावणके समान हाथोंसे सुमेरु पर्वत भी उठा लिया तो इससे क्या ? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥ ९ ॥

चवेलः पीतो दुग्धवद्वा ततः किं वह्निजग्धो लाजवद्वा ततः किम् ।
प्रासश्चारः पक्षिवत्खे ततः किं येन ... ... ॥१०॥

विषको दूधके समान भी पी लिया तो इससे क्या ? लाजा ( लावा ) के समान यदि अग्निका भक्षण भी कर लिया, जैसे चकोर पक्षी करता है तो इससे भी क्या ? यदि पक्षीके समान आकाशमण्डलका योगादि अथवा वायुयान आदि नवीन वैज्ञानिक आविष्कारोंके बलसे भ्रमण भी कर लिया तो इससे क्या ? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥ १० ॥

बद्धाः सम्यक् पावकाद्यास्ततः किम् । साक्षाद्विद्धा लोहवर्णास्ततः किम् ।
लब्धो निक्षेपोऽञ्जनाद्यैस्ततः किम्, येन ... ... ... ॥११॥

यदि अग्नि, जल आदिको मन्त्र और औषधि आदि द्वारा बाँध लिया अर्थात् अग्निकी दाहक शक्ति रोक ली जलका निम्न देशकी ओर बहना रोक लिया तो इससे क्या ? यदि बाणादि द्वारा साक्षात् लक्ष्य भेदन कर लिया अथवा अन्धकार में भी दूर दृष्टि प्राप्त करली और अंजनादिको आँखोंमें डालकर भूमि आदि गत स्वर्णादि विविध गुप्त निधियोंको भी जान लिया तो इससे क्या ? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥ ११ ॥

भूपेन्द्रत्वं प्राप्तमुर्व्यां ततः किम्, देवेन्द्रत्वं संभृतं वा ततः किम् ।
मुण्डीन्द्रत्वं चोपलब्धं ततः किम्, येन ... ... ॥१२॥

यदि मान्धाता आदिके समान समस्त भूमण्डलका सम्राट् भी हो गया तो इससे क्या ? स्वर्ग लोक स्थित देवोंका अधिपति इन्द्र भी हो गया तो इससे क्या ? यदि यतियोंका प्रधान भी हो गया तो इससे क्या ? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥ १२ ॥

मन्त्रैः सर्वः स्तंभितो वा ततः किम्, बाणैर्लक्ष्यो भेदितो वा ततः किम् ।
कालज्ञानं चापि लब्धं ततः किम्, येन ... ... ... ॥१३॥

यदि मन्त्रोंके बलसे समस्त चल वस्तु जलादिको रोक भी लिया तो इससे क्या, और अर्जुनादिके समान बाणों द्वारा लक्ष्यका भेदन भी किया तो इससे क्या ? यदि मृत्यु आदिका अथवा कालकी विशेष घटनाओंका ज्ञान भी प्राप्त कर लिया तो इससे क्या ? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥ १३ ॥



कामान्तकः खण्डितो वा ततः किम्, कोपावेशः कुण्ठितो वा ततः किम् ।
लोभश्लेषो वर्जितो वा ततः किम्, येन ... ... ... ॥१४॥

काल पर भी यदि विजय प्राप्त कर लिया अर्थात् लोमश, मार्कण्डेय आदि के समान यदि दीर्घजीवी भी हो गया तो इससे क्या ? क्रोधावेशको भी यदि दबा लिया तो इससे क्या ? पापके हेतु भूत लोभ पर भी यदि विजय प्राप्त कर लिया तो इससे क्या ? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥१४॥

मोहध्वान्तः पेषितो वा ततः किम्, जातो भूमौ निर्मदो वा ततः किम् ।
मात्सर्यार्तिर्मीलिता वा ततः किम्, येन ... ... ... ॥१५॥

मोह रूपी अन्धकारको भी यदि दूर कर लिया तो इससे क्या ? ससारमें उत्पन्न होकर पृथ्वीपर यदि मद रहित भी हो गया तो इससे क्या ? ईर्ष्यासे होने वाले क्लेशको भी यदि मिटा लिया अर्थात् जिसके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न होती है, उसके मनमें ईर्ष्या-जन्यपीड़ा अवश्य होती है, यदि उसको भी जीत लिया तो इससे क्या ? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥१५॥

धातुर्लोकः साधितो वा ततः किम्, विष्णोर्लोको वीक्षितो वा ततः किम् ।
शम्भोर्लोकः शासितो वा ततः किम्, येन ... ... ... ॥१६॥

उपासना अथवा तपस्यादि द्वारा यदि ब्रह्मलोकको भी प्राप्त कर लिया यदि विष्णुलोक भी देख लिया तो इससे क्या ? यदि किसी साधन द्वारा शिवलोकका शासक भी हो गया तो इससे क्या ? यदि आत्मसाक्षात्कार नहीं किया तो ? ॥१६॥

यस्येदं हृदये सम्यगनात्मश्रीविगर्हणम् ।
सदोदेति स एवात्मसाक्षात्कारस्य भाजनम् ॥ १७ ॥

जिसके हृदयमें अनात्मवैभवकी निन्दा जो पूर्व श्लोकोंमें कही गई है, भली-भाँति निरन्तर जाग्रत् होती रहती है, वही आत्मसाक्षात्कारका पात्र है ॥ १७ ॥

समस्त आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक वैभवमें जब सारग्राही विचार द्वारा जान लेता है कि देह आदिसे लेकर यह सभी वैभव वस्तुतः सार रहित है, तब उसके मनमें असार संसारसे वैराग्य उत्पन्न होता है, वैराग्यसे षट्-सम्पत्ति ( शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति, तितिक्षा ) और मुमुक्षुता प्राप्त होती हैं। इन चार साधनोंसे युक्त व्यक्ति ही अधिकारी है। 'सोऽन्वेष्टव्यः'

'याज्ञवल्क्य–हे मैत्रयी ! मुमुक्षुको आत्माकी खोज करनी चाहिए, उसकी जिज्ञासा करनी चाहिए' 'जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं. जिसकी सत्ता स्फूर्तिसे प्राणी जीवित रहते हैं और महाप्रलय कालमें जिसमें जाकर सब लय होते हैं वह ब्रह्म है, उसकी जिज्ञासा कर। उसको जाननेके लिए समिधा–भेंट लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास विधिवत् जा' (तै०३।१) "तद्विद्धि प्रणिपातेन" (गी०४।३८) हे अर्जुन ! तत्ववेत्ताओंके पास जाकर दण्डवत् प्रणाम कर और सेवा द्वारा उनके मनको प्रसन्न कर, आत्मविषयक प्रश्न द्वारा आत्माको जान। वह तुम्हें आत्मोपदेश करेंगे ) श्रुति और स्मृतिमें इस प्रकार प्रतिपादन है। 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः० ( समस्त प्राणियोंमें एक ही आत्मदेव छिपा हुआ विद्यमान है, जैसे दूधमें मक्खन, तिलोमें तैल, मन आदि इन्द्रियों, स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाओं, अन्तर और बाह्य सभी पदार्थोंका द्रष्टा–साक्षी है। वह सभीको जानता है परन्तु उनको कोई नहीं जानता। वह सब भूतोंका अन्तरात्मा है असंग है निर्गुण और चेतन स्वरूप आत्मा है ) और 'नैनं छिन्दन्ति ( गी० ) ( शस्त्र उसे काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता और पवन सुखा नहीं सकता, क्योंकि आत्मा अच्छेद्यादि है। इस प्रकार आत्माके स्वरूपका श्रुति और स्मृतिमें प्रतिपादन है। आत्मा तो सबके भीतर और बाहर ओत-प्रोत है। शस्त्रादिकी प्रत्येक गति विधि को आत्मा स्वीरूपसे जानता है, इसलिये आत्मा ही सबका सार है। आत्माकी सत्तासे ही नाम. रूप जगत्में अस्ति, भाति, प्रियरूपता प्रतीत होती है, इससे आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप श्रुतियोंमें कहा गया है।

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चनेति' (आनन्द स्वरूप ब्रह्मको जानकर–'ब्रह्म ही आनन्द स्वरूप है जगत् नहीं और वहमैं ही हूँ–ऐसा जान कर विद्वान् किसीसे भयभीत नहीं होत) अज्ञान मूलक द्वैत ही भयका कारण है, वह अज्ञान ब्रह्मवेत्ता गुरु द्वारा 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंके श्रवण आदि करनेसे निवृत्त हो जाता है। इस प्रकार मुमुक्षुको आत्मसाक्षात्कार हो जाता है, इससे वह कृतकृत्य और आप्त काम हो जाता है, क्योंकि 'ब्रह्मवित् ब्रह्म स्वरूप ही है' अतः 'मरण-समय आत्मवित्-ज्ञानीके प्राण इस शरीरसे उत्क्रमण नहीं



करते, अपितु, इसी शरीरमें ( अपने तत्त्वोंमें ) ही लय हो जाते हैं। कारण कि 'अत्रैव ब्रह्म समश्नुते' (यहींपर ही ब्रह्म स्वरूप हो जाता है) 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि' ( आत्मसाक्षात्कार होने पर उस विद्वान् की चित् जड़ ग्रंथि, संशय और समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं ) इस प्रकार संसारके मूल अज्ञानकी निवृत्ति होनेपर 'न स पुनरावर्तते' ( वह आत्मवित् पुनः संसारमें नहीं आता है ) आत्मसाक्षात्कार होनेपर वह ब्रह्मवेत्ता अपनेको इस प्रकार अनुभव करता है—

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहम्, न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योम-भूमी न तेजो न वायुः, चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

मैं मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त नहीं हूं; क्योंकि ये चारों अन्तःकरण हैं। अन्तःकरण माया ( अविद्याके ) सत्त्व गुणका कार्य है, अपंचीकृत पाँच भूतोंसे इसका निर्माण हुआ है, अर्थात् अन्तःकरण पाँच भौतिक है, इसलिये मायातीत मैं अन्तःकरण कैसे हो सकता हूँ ? अर्थात् नहीं हो सकता। एवं मैं कर्ण और जिह्वा नहीं हूँ, नासिका और नेत्र भी नहीं हूँ, क्योंकि कर्ण, नेत्र, जिह्वा, नासिका और त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, ये शब्द आदि विषयोंके ज्ञानके साधन हैं; ये भी अपंचीकृत पाँच भूतोंके प्रत्येकके सत्त्व अंशसे उत्पन्न हुई हैं और मैं ज्ञानेन्द्रियोंकी प्रत्येक चेष्टाको जानता हूं तो फिरमें ज्ञानेन्द्रियाँ कैसे हो सकता हूँ ? अर्थात् नहीं हो सकता। मैं आकाश और पृथ्वी नहीं हूँ, मैं तेज नहीं हूं, मैं वायु नहीं हूँ, क्योंकि आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी यह पांच महाभूत मायाके कार्य हैं, इसलिये कार्य-करण शून्य, मैं पाँच महाभूत कैसे हो सकता हूं अर्थात् नहीं हो सकता। किन्तु मैं चिदानन्द स्वरूप शिव हूँ, मैं शिव तत्त्व हूँ, अर्थात् मैं चैतन्यस्वरूप ब्रह्म हूँ, समस्त जड़ प्रपंचको चेतनता प्रदान करता हूं, जिससे समस्त ब्रह्माण्डोंका स्फुरण होता है। मैं विशुद्ध अमृतानन्दका महासागर हूँ। मेरे ही आनन्द कणको पाकर समस्त ब्रह्माण्ड आनन्द वाले प्रतीत हो रहे है। अहा ! मैं ही कल्याण स्वरूप शिव हूँ, मैं ही देवाधिदेव शिवशंकर हूँ ।१७।

अन्ये तु मायिकजगद्भ्रान्तिव्यामोह मोहिताः।
न तेषां जायते क्वापि स्वात्मसाक्षात्कृतिर्भुवि॥ १८॥

और जो इस अनात्म वैभवकी प्राप्तिमें ही मानव जीवनका पूर्ण उद्देश्य

समझते हैं वे मायासे निर्मित इस जगद्-भ्रान्तिमें अज्ञान पूर्वक व्यामोहमें मोहित हैं, उन्हें कदाचिद् भी आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता ॥१८॥

अविद्या स्वरूपसे अनर्थका कारण नहीं है, किन्तु कार्य द्वारा। यथा सुषुप्ति में अविद्याके रहते भी किसी प्रकारका क्लेश अनुभव नहीं होता, अपितु आनन्द का ही सभीको अनुभव होता है, जिसको जागने पर प्रमाणित करते हैं कि 'मैं सुख से सोया'। जैसे बीज स्वरूपसे हानि-लाभका हेतु नहीं होता, जब तक कार्य-वृक्ष आदिके रूपमें परिणत होकर फल आदिको उत्पन्न नहीं करता, वैसे अविद्या भी जिसके आश्रित रहती है, प्रथम उस आत्माको आवृत्त करती है, जिससे उसका यथार्थ सत्, चित्, आनन्द स्वरूप अनुभवमें नहीं आता। बिलकुल नहीं आता यह बात नहीं, किन्तु अविद्याकी महिमासे अविद्याके कार्य प्रपंचमें उसकी अस्ति, भाति, प्रियरूपतासे प्रतीति होती रहती है। अविद्याको अध्यास और मिथ्याज्ञान भी कहते हैं। अतद्में तदुद्धिका नाम मिथ्याज्ञान है। अनित्य,अपवित्र,दुःख और अनात्म देह आदि जगत्को क्रमसे नित्य, पवित्र, सुख और अनात्म रूप मानना यही अविद्या है। इससे देहादिमें अहं मम भाव उत्पन्न होता है, इसप्रकार राग, द्वेष, और अभिनिवेश ( मृत्युभय ) आदि उत्पन्न होते हैं, जिससे न्यूनता आदि की प्राप्ति होती है। जिसको पूर्तिके लिये विविध शुभाशुभ कर्म करता और भोगता है। इसी प्रकार घटीयन्त्रके समान शुभाशुभ योनियोंमें भ्रमता हुआ महान् दुःखका अनुभव करता है। इस प्रकार अविद्यासे मोहित हुआ आत्म-साक्षात्कार नहीं कर सकता। आत्मसाक्षात्कारके बिना शान्तिकी चरमसीमा तक पहुंचने की प्रबल इच्छा रखते हुए भी पहुँच नहीं पाता, क्योंकि इसके साधन अशान्तिकी चरमसीमातक पहुँचानेमें समर्थ हैं। प्राणी प्रकाशको चाहते हुए भी अन्धकारके साधनोंके जुटानेमें व्यस्त हैं। जब कि श्रुति ललकार कर कहती है कि 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माअमृतं गमय' परन्तु वर्तमान युग वैज्ञानिक युग कहलाता है, जिसमें वैज्ञानिक विद्वानोंने नये-नये आविष्कार कर प्राणियोंको चकित-सा कर दिया है। प्राणी-संहारक विविध अस्त्र शस्त्र आदि बुद्धि की ही एक उपज है। इतनी विज्ञानकी प्रगति-यथा अन्तरिक्षके सूक्ष्म तत्त्वों का उपग्रहों द्वारा अन्वेषण करना, चन्द्रलोकादि नक्षत्रों तक पहुँच कर वापिस



लौटना इत्यादि होनेपर भी प्रत्येक देश भयसे मुक्त नहीं है। चाहिये तो यह था कि विज्ञानकी प्रगतिसे लोग दीनता, दरिद्रता, न्यूनता आदि अशान्ति और भय आदिसे मुक्त होकर सुख और चैनसे श्वास लेते, लेकिन लें कैसे ? जब कि सभीको सर्वत्रसंहारक साधन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अतः उक्त संकट ग्रस्त कालसे बचनेके लिये और विश्वके यावत् प्राणियोंको शान्ति-दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिके लिये सही साधन आत्मैकत्व ज्ञान ही है। आध्यात्मिक प्रगतिको छोड़कर केवल आधिभौतिक प्रगति शान्तिका साधन नहीं है। इससे तो केवल अनात्माभिमान दृढ़ होता है जो संसारके लिये केवल हानिप्रद है। इसलिये विश्वमें शान्तिस्थापन करनेके लिये स्वयं आध्यात्मिक ज्ञान संपादन कर इसका प्रचार करना चाहिये, जिससे प्रत्येक प्राणीके अन्तःकरणमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यतिसःपश्यति' ( समस्त चराचर प्राणियोंमें जो आत्माके समान देखता है, वही देखता है, वही देखता है ) ऐसी आत्मवत् भावना जाग्रत होनी चाहिये। विषमता ही समस्त संकटोंका मूल कारण है और वह समतासे ही दूर हो सकती है। यह समता आत्मज्ञानसे ही प्राप्त हो सकती है अन्यथा नहीं। इसलिये पूज्य पाद जगद्गुरु श्री आद्य शंकराचार्य महाराजने उचित ही उपदेश किया है कि आत्मसाक्षात्कारके बिना जो भी अनात्मवैभव है, वह सब अनर्थका ही मूल है। अतः अवश्य आत्मसाक्षात्कार करना चाहिये ॥१८॥

---

## आत्मषटक्स्तोत्रम्

नोबुद्धयहंकारचित्तानि नाहम्, न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमी न तेजो न वायुः, चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥१॥

मैं मन, बुद्धि अहंकार और चित्त नहीं हूं, क्योंकि अपंचीकृत पांच भूतोंके सत्वांशसे इनका निर्माण हुआ है। मैं श्रोत्र और जिह्वा नहीं हूँ, मैं घ्राण और चक्षु भी नहीं हूँ। श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण ये पांच ज्ञानेन्द्रिय शब्दादि विषयोंके ज्ञानके साधन हैं। अपंचीकृत पांच भूतोंके प्रत्येकके सत्वांशसे निर्माण हुआ है। मैं आकाश और पृथ्वी नहीं हूँ, तेज नहीं [illegible] किन्तु इन सबका प्रकाशक चिदानन्दरूप मैं शिव हूं, मैं [illegible]

न च प्राणवर्गो न पंचानिला मे, न वा सप्तधातुर्न वा पंचकोशः ।
न वाक् पाणिपादौ न चोपस्थपायुः, चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ २ ॥

मैं प्राण समुदाय नहीं हूं, अतः मेरे पांच वायु नहीं हैं, प्राण, अपान समान उदान और व्यान ये पांच प्राण और नाग आदि पांच उपप्राण, इ प्राण समुदाय है। पांच भूतोंके राजस अंशसे इनका निर्माण है। रस, र, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा एवं वीर्य ये सात धातु जो स्थूल शरीर मय हैं, मैं नहीं हूँ। अन्नमयादि पांच कोश भी नहीं हूं। वाणी, हाथ, पैर, लिङ्ग और दिया ये कर्मेन्द्रिय नहीं हूँ। किन्तु चिदानन्दरूप मैं शिवतत्त्व हूं, मैं शिव हूँ ॥ ३ ॥

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ, मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः ।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षः, चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ३ ॥

मुझमें राग द्वेष नहीं है, मुझमें लोभ, मोह नहीं है, मुझमें मदनहीं है, मुझमें मात्सर्यभाव नहीं है, मुझमें धर्म नहीं, मुझमें अर्थ नहीं, मुझमें काम नहीं, मुझमें मोक्ष नहीं, क्योंकि ये सब जीवमें होते हैं, मैं तो चिदान्दस्वरूप शि हूं ।३

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं, न मन्त्रो न तीर्थं न वेदो न यज्ञः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता, चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ४ ॥

मुझमें न तो पुण्य है, न पाप है, न सुख है, न दुःख है, न मन्त्र है न तीर्थ न वेद है, न यज्ञ है। मैं न भोजन हूं, न भोज्य हूँ, न भोक्ता हूं किन्तु सबका प्रकाशक चिदानन्दरूप मैं हूं, मैं शिव हूँ ॥ ४ ॥

न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः, पिता नैव मे नैव माता न जन्म
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः, चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ५ ॥

मुझमें न मृत्यु शङ्का है, क्योंकि मैं अज हूँ, अतः मुझमें न जातिभेद है, मेरा पिता है, न माता है, न जन्म है, न बन्धु है, न मित्र है, न गुरु है, न है, किन्तु मैं चिदानन्दरूप शिव हूं, मैं शिव तत्त्व हूं ॥ ५ ॥

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो, विभुर्व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि ।
सदा मे समत्वं न मुक्तिर्न बन्धः, चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ६ ॥

मैं निराकार, व्यापक हूँ, सर्वत्र सब इन्द्रियोंमें व्याप्त हूं, मुझमें सदा बुद्धि की ही एक उप[illegible] है, न बन्ध है, मैं केवल चिदानन्दरूप शिव हूँ ॥ ६ ॥

प्राणियोंको [illegible] का उपग्रहों द्वारा अन्वेषण